RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 28 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 4 अक्तूबर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 28, 1-4 अक्तूबर 2020 तदनुसार 19 आश्विन, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

अश्विदेव आत्मा को पाप से छुड़ाते हैं

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

ऋषिं नरावंहस: पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता।।

-ऋ. १।११७।३

शब्दार्थ-हे **नरौ** = जीवननेताओ! **अश्विनौ** = तुम दोनों **अशिवस्य** = अमङ्गल **दस्यो:** = दस्यु, अकर्म्मा के **माया:** = कपटों को **मिनन्ता** = नाश करते हुए और **अनुपूर्वम्** = पूर्ववत्, यथापूर्व **वृषणा** = सुखवर्षक होकर **चोदयन्ता** = भली प्रेरणा करते हुए **पाञ्चजन्यम्** = पञ्चजन के हितकारी, पाँचों इन्द्रियों के उपकारी **अत्रिम्** = सत्त्वगुण-रजोगुण-तमोगुण से रहित अथवा भोक्ता **ऋषिम्** = द्रष्टा आत्मा को **ऋबीसात्** = कुत्सित **अंहस:** = पाप से **गणेन** = गण के द्वारा, परिसंख्यान ज्ञान के द्वारा **मुञ्चथ:** = छुड़ाते हो।

व्याख्या-इस मन्त्र का देवता 'अश्विनौ' है। ये दो हैं। वेद के अनुशीलन से यह प्रकाश-अन्धकार, दिन-रात, सूर्य-चन्द्र, द्यावा-पृथिवी, दो प्रभाती तारे, प्राण-अपान आदि अनेक जोड़ों के नाम हैं। यहाँ इस मन्त्र में प्राण-अपान 'अश्विनौ' हैं। साधारणतया हमारे शरीर में प्राण और अपान अपना कार्य स्वतन्त्रता से मानो एक-दूसरे से निरपेक्ष होकर कर रहे हैं। उस अवस्था में भी यह आत्मा को शरीर-वियोगरूप दु:ख से बचाये रखते हैं। जब योगी प्राणसाधना द्वारा अथवा ध्यान द्वारा प्राण और अपान को मिला देता है, तब जो कुछ होता है, उसका वर्णन मन्त्र में बहुत सुन्दर शब्दों से स्मरण किया गया है, वे बहुत महत्त्वशाली हैं-

ऋषि-**ऋषिर्दर्शनात्** = जो देखे, दिखलाये, वह ऋषि। निरुक्त के इस वचन के अनुसार आत्मा और इन्द्रियाँ ऋषि हैं। यजुर्वेद [३४।५५] में तो इन्द्रियों को स्पष्ट ऋषि नाम दिया गया है-**'सप्त ऋषय: प्रतिहिता: शरीरे'** = सात ऋषि शरीर में बिठाये हुए हैं। सात इन्द्रियाँ अथवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये सात शरीर में रहते हैं, इनको वेद ने ऋषि कहा है। आत्मा द्रष्टा होने से ऋषि है। वह केवल द्रष्टा ही नहीं वह **'अत्रि'** = भोक्ता भी है। भोक्ता और द्रष्टा कहने से कर्तृत्व स्वत: सिद्ध हो जाता है, किन्तु वेद ने इसको यहाँ **'पाञ्चजन्य'** भी कहा। पाँच इन्द्रियों का हितकारी, अर्थात् वह इन्द्रियों का अधिष्ठाता भी है, इन्द्रियों का अधिष्ठाता कहो, कर्त्ता कहो, एक बात है।

योगी जब आत्मा के स्वरूप तथा शक्ति को गुरुमुख द्वारा शास्त्र से जान लेता है, तब वह प्राण-अपान के साधन में लगता है। उसके लिए पहले उसे **अकर्मण्यता** = दस्युपन का नाश करना होता है, अर्थात् योगाभ्यासी बहुत बड़ा कर्मठ होता है और क्रम से प्राण-अपान की साधना से उसे उत्तरोत्तर शुभ प्रेरणाएँ मिलती हैं। अकर्मण्यता-त्याग के साथ आत्मा के तेजोनाशक अज्ञानादि का भी निरास करता है। साधन और ज्ञानाभ्यास इन दोनों के कारण उसकी कुत्सित वासनाओं का नाश हो जाता है और प्राण के अभ्यास से उसके भीतर सदाचार के लिए प्रीति उत्पन्न हो जाती है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कवि: काव्येन परि पाह्यग्रे।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं न:।।

-अथर्व. ८.३.२०

भावार्थ-हे ज्ञानमय ज्ञानप्रद परमात्मन्! आप अपनी सर्वज्ञता और रक्षा से पूर्व आदि सब दिशाओं में हमारी रक्षा करें। आप ही हमारे सच्चे मित्र हैं, आप मरण से रहित अजर-अमर हैं, हम तो जरा-मरण युक्त हैं आपके बिना हमारा कोई रक्षक नहीं, हम आपकी शरण में आये हैं आप ही रक्षा करें।

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपित: शतं हिमा:।।

-अथर्व. २.१८.४

भावार्थ-परमेश्वर मनुष्य को आशीर्वाद देते हैं कि, हे मनुष्य! जैसे पुरुष अपने माता से उत्पन्न होकर उस माता की गोद में स्थित रहता है और अपने पिता से पालन पोषण को प्राप्त होता है, ऐसे ही पृथिवी रूपी माता से उत्पन्न हो कर, उस पृथिवी की गोद में रहता हुआ तू मनुष्य, द्युलोक रूप पिता से पालन पोषण को प्राप्त हो रहा है। द्युलोक और पृथिवी तेरे अनुकूल हुए, सौ वर्ष पर्यन्त जीने में सहायता करें। तू सारी आयु में अच्छे-अच्छे कर्म करता हुआ, ब्रह्मज्ञान और प्रभु-भक्ति द्वारा मोक्ष-सुख को प्राप्त हो।

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्य:।
शुचि: पावक ईड्य:।।

-अथर्व. ८.३.२६

भावार्थ-हे दुष्ट विनाशक पतित पावन ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! दुष्ट राक्षसों के नाश करने वाले, अमर, शुद्ध स्वरूप, शरणागत पतितों के भी पावन करने वाले, संसार में आप ही स्तुति करने योग्य हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-ये चार पुरुषार्थ आपकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना से ही प्राप्त होते हैं अन्य की स्तुति से नहीं, इसलिए हम लोग आपको ही मोक्ष आदि सब सुख दाता जानकर, आपकी शरणागत हुए, आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं।

वेदों का राजनैतिक चिन्तन

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदों के पण्डित ही नहीं उनके अनन्य भक्त भी थे। उनका कहना था कि, वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। यदि वे इस वाक्य में से 'सब' शब्द को निकाल देते तो केश्वचन्द्र सेन अपनी ब्रह्म समाज सहित आर्य समाज में सहर्ष सम्मिलित हो जाते। उनके आर्य समाज में प्रविष्ट हो जाने से स्वामी जी को अंग्रेजी का एक उद्भट्ट विद्वान् तथा धारावाहिक ओजस्वी व्याख्याता सहायक के रूप में प्राप्त हो जाता और वे यूरोप तथा अमेरिका तक उनके साथ घूम कर अपनी वैदिक मान्यताओं का प्रचार-प्रसार करने में सफल हो जाते परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह समझौता स्वीकार नहीं किया। इस घटना ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया। इसलिये मैंने निश्चय किया कि मैं स्वयं वेदों का गहन अध्ययन कर ज्ञात करूं कि क्या वास्तव में वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वर्षों तक वेदों का अध्ययन करने के अनन्तर मैं भी इस निश्चय पर पहुंचा कि वास्तव में वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। अंकुर के रूप में सभी विद्याओं को वेद अपने कलेवर में समेटे हुए हैं। तब मैंने निश्चय किया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के उक्त कथन की सिद्धि हेतु मैं कम से कम 10 विभिन्न विषयों पर 10 ग्रन्थों की रचना करूं। अब तक मैं 11 पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कर चुका हूँ और 5 पुस्तकें अपने प्रकाशन की प्रतीक्षा भी कर रही है। इतना ही नहीं मैं वेद पर 850 से भी अधिक शोध पत्र भी अब तक लिख चुका हूँ। लगभग 500 शोध पत्र भी प्रकाशित हो चुके हैं। अस्तु, सबसे पहले मैंने राजनीति विषय के लिए सामग्री जुटाई। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस विषय पर तो इतनी अधिक सामग्री उपलब्ध है कि राजनीति पर कई ग्रन्थों की रचना की जा सकती है। मुझे इस विषय पर 1200 से भी अधिक मंत्र प्राप्त हुए है। अब मैं अत्यन्त संक्षेप में राजनीति विषयक वेदों का चिंतन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। चिंतन के मुख्य बिन्दु निम्नांकित है-राज्य की उत्पत्ति का सिद्धांत, राज्य के मूल तत्व, राज्य का प्रकार, गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली, संसद, राजा का निर्वाचन, राजा और संसद का सम्बन्ध, सार्वभौमिकता, प्रशासन, कराधान, देश की आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा, राजा और शिक्षा, उद्योग धंधे और राज्य आवगमन के साधन, विदेश नीति, युद्ध, सन्धि, विग्रह तथा लोक कल्याण।

अब सर्वप्रथम हम राज्य की उत्पत्ति के सिद्धांत पर विचार करते हैं। राजनीति विज्ञान के विद्वानों के अनुसार राज्य की उत्पत्ति के सिद्धांत है-दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत, शक्ति सिद्धांत, विकासवादी सिद्धांत तथा सामाजिक समझौते का सिद्धांत! यूरोप में 15वीं सदी तक राजा लोग दैवीय सिद्धांत के अनुयायी रहे हैं। भारत में तो अभी तक लोग 'भगवद् गीता के श्लोक' का समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इन्दिरा के नाम लिखे गए पत्रों में शक्ति सिद्धांत एवं विकासवादी सिद्धांत को सम्मिलित करके अच्छा विवेचन किया है। मध्य युग में सम्पूर्ण एशिया एवं यूरोप के शासक शक्ति सिद्धांत के उपासक थे। 20वीं सदी में हॉब्स और लुको ने सामाजिक समझौते के सिद्धांत पर अधिक बल दिया है! वेदों में इसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। राज्य की उत्पत्ति मुख्य रूप से निर्बल धार्मिक पुरूषों की बलवान अधर्मी दुष्ट पुरूषों से रक्षा हेतु की गई है। ऋग्वेद 1.36.15 में कहा गया है-

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराब्णः।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य।।

हे बड़े-बड़े विद्यादि के तेज वाले, तरूण अवस्था युक्त, सब में मुख्य सबकी रक्षा करने वाले राजन्। आप कपटी, अधर्मी, दान धर्म रहित कृपण, महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से हम को बचाइये। सब को दुःख देने वाले मनुष्य से हमको पृथक् रखिए और मारने की इच्छा करने वाले शत्रु से हमारी रक्षा कीजिए।

फिर ऋग्वेद 10.148.1 में राज्य की उत्पत्ति का मुख्य कारण खेती बाड़ी, धन धान्यादि सब पदार्थों की रक्षापूर्वक उत्पत्ति और न्यायपूर्वक विभाजन राज्य द्वारा ही सम्भव है। राज्य के अभाव में प्रजा परस्पर भक्षक बन कर नष्ट हो जावेगी। ऋग्वेद 7.24.1 में कहा गया है कि हे राजन्! आपके विराजने के लिए आपका यह राज सिंहासन हमने बनाया है। ऋग्वेद 8.97.10 में कहा गया है-

विश्वाः पृतना अभि भूतरं नः सजूस्ततक्षुरिन्द्र जजनुश्चराजसे।

क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्।।

मनुष्य लोग एक साथ मिल कर सभी को पराजित करने वाले नेता को घड़ कर बनाते हैं तथा राज्य करने के लिए उसको ऐश्वर्यवान् बना डालते हैं। कैसे नेता को राजा बनाते हैं? इस पर कहा गया जो अपने कर्मों से श्रेष्ठ है। चुनाव के प्रयोजन के अनभीष्टों का विध्वंसक है, साथ ही तेजस्वी है, बल कारक है और स्वयं बलवान् है। राजा को उसकी सेवा के बदले में राज्य की समस्त भूमि, खानों आदि का स्वामी माना जाता है। इसे निम्न मंत्र में दर्शाया गया है।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमा विश्वरूपं यदस्य।

ततो ददाति दाशुरे वसूनि चोद द्राध उपस्तु चिदर्वाक्।।

सामवेद मं. 587

प्रजापालक राजा जंगम आदि पशु तथा मनुष्यों का स्वामी है। जो कुछ सब प्रकार का धन है वह इस राजा का है। वह इस धन में से दानादि करने वाले पुरूष के लिए धन देता है और हमारे सामने के मनोवांछित धन को प्रेरणा करता है।

राज्य के मूल तत्व-लगभग सभी राजनीति विज्ञान के विद्वानों की मान्यता है कि राज्य अथवा राष्ट्र छः अंगों निश्चित भू भाग, जनसंख्या, एक भाषा, एक संस्कृति, सार्वभौम, अधिकार सम्पन्न सरकार तथा जनमत को मिला कर बनता है। भारत में बहुभाषा और कई संस्कृतियों के होने के कारण सदैव अराजकता सी दिखाई देती है। निश्चित भू भाग और जनसंख्या के अभाव में तो राज्य या राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। ऋग्वेद 1.13.9 में कहा गया है, 'इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्भयोभुवः। तीन देवियां मातृ भाषा, मातृ संस्कृति और मातृ भूमि हिंसा रहित एवं कल्याणकारी है। देश की आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमण से सुरक्षा के लिए एक शक्ति सम्पन्न सरकार की कल्पना वेदों में है। ऋग्वेद 10.76.4 में कहा गया है-

अपहत रक्षसो भङ्गशुरावतः स्कभायत निर्ऋति सेधतामतिम्।

आ नो रयिं सर्व वारं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोक द्रयः।।

हे राजन्। दुष्टों का नाश करो, व्यवस्था भंग करने वालो को वश में करो। दुःख, दरिद्रता, अज्ञान और विरोध को दूर करो।

इसी प्रकार अथर्व. 1.21.2 में कहा गया है: हे राजन्। हमारे शत्रुओं को मार डाल। सेना चढ़ा कर लाने वाले को रोक दे। जो राष्ट्र को हानि पहुंचाए उसे कैद कर नीचे अंधकार में डाल दे।

सरकार के पक्ष में जनमत होना आवश्यक है। जनमत के अभाव में ही अंग्रेजों को भारत से जाना पड़ा है। जिस शासक के पक्ष में जनमत होता है उसके साथ प्रजा कैसा व्यवहार करती है? इस विषय में कहा गया है-

'हे देश वासियों। हजारों व्यक्ति परस्पर मिल कर इसका सम्मान करो। बीसियों मिलकर सब ओर से नियंत्रण रखो। सैकड़ों अनुकूलता के साथ इसकी स्तुति करो। इस प्रतापी शासक के लिए जो सत्य के लिए उद्यत है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

विश्व में शान्ति कैसे हो सकती है।

प्रतिवर्ष 21 सितम्बर को पूरे विश्व में शान्ति दिवस मनाया जाता है। सर्वत्र चारों ओर शान्ति की कामना की जाती है परन्तु क्या केवल कामना कर लेने से शान्ति प्राप्त हो सकती है? आज मनुष्य जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहा है, जिन साधनों के द्वारा समृद्ध होकर शान्ति की कामना करता है, उन्हीं साधनों के द्वारा अशान्त होता जा रहा है। आज का मनुष्य भौतिक पदार्थों, धन-सम्पत्ति जमा करने को ही शान्ति समझता है। उन साधनों को प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के नैतिक और अनैतिक कार्य करने को तैयार हो जाता है। अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टाचार के द्वारा कमाई हुई दौलत से मनुष्य शान्ति प्राप्त करने का प्रयास करता है। जब तक मनुष्य के जीवन में शुचिता नहीं आयेगी, धर्म के मार्ग पर चलकर धन-सम्पत्ति प्राप्त नहीं करेगा तब तक उसे स्थायी सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। शान्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपने आत्मा को शुद्ध करना होता है। आत्मा की शुद्धि के बिना मनुष्य का व्यवहार कभी शुद्ध नहीं हो सकता और व्यवहार की शुद्धि के बिना वह कभी शान्त नहीं रह सकता।

महर्षि मनु ने कहा है कि शरीर जल से शुद्ध होता है, मन सत्यविचार सत्याचरण से, बुद्धि ज्ञान से तथा आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होता है। इसे हमें इस प्रकार समझना चाहिए कि हमारे चार स्थानों को चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है। शरीर के लिए अर्थ की क्योंकि भोजन के बिना शरीर की स्थिति नहीं है। मन के लिए काम, बुद्धि के लिए धर्म और आत्मा के लिए मोक्ष की आवश्यकता होती है। धर्म को छोड़कर यदि अर्थ और काम की प्राप्ति होती है तो मनुष्य स्वार्थी और कामी बन जाता है। जब तक बुद्धि अपनी धर्म की आवश्यकता को पूर्ण करके शरीर और मन की आवश्यकताओं का आश्रय नहीं लेगी, तब तक मन निस्वार्थ और निष्कामता की पवित्रता को ग्रहण नहीं कर सकता, उस दशा में आत्मा को मोक्ष का मार्ग सूझता ही नहीं। इन सबको उचित प्रकार से संचालन करने वाला धर्म है जिसकी आवश्यकता सबसे मुख्य है। धर्म की विवेचना बड़ी गहन है किन्तु मनु महाराज ने एक वाक्य में कहा है- आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् अर्थात् जिस बात को तू अपने लिए पसन्द नहीं करता, उसे दूसरे के साथ मत कर। कोई मनुष्य पसन्द नहीं करता कि उसकी वस्तु कोई दूसरा व्यक्ति उठा ले जाए। कोई भी व्यक्ति अपने बच्चे को दूसरे के हाथ से मारा जाता हुआ देखकर प्रसन्न नहीं होगा। कुवचन, अन्याय, विश्वासघात, छल, कपट कोई भी व्यक्ति अपने लिए पसन्द नहीं करता तो प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक हो गया है कि दूसरे की वस्तु का अपहरण करना, अन्य प्राणी का हनन करना, दूसरे से कुवाक्य, अन्याय, विश्वासघात, छल, कपट का व्यवहार कभी न करे। तभी संसार की अशान्ति दूर होगी और दुःख का लेश भी दिखाई न देगा। इसलिए यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः सः धर्मः अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्यों का उत्थान हो और कल्याण की प्राप्ति हो वही धर्म है। यह धर्म की वैज्ञानिक और सार्वभौम परिभाषा है।

जब मनुष्य अपनी वस्तु के चुराए जाने पर दुख और दूसरे की वस्तु चुराने में हर्ष और उत्सुकता प्रकट करेगा। स्वयं कड़वा वचन भी न सुनेगा, अन्य को कुवाक्य कहने तथा अपमानित करने में आनन्द अनुभव करेगा। परनारी को कुदृष्टि से देखना, धोखा देना, विश्वासघात, छल कपट, दूसरों को पीड़ा देना आदि कार्यों से नहीं डरेगा तो संसार में उसी प्रकार अशान्ति, कलह, दुःख बढ़ते जाएंगे और मनुष्य पतित होते चले जाएंगे। बुद्धि के साथ धर्म के न होने से जो कुछ भी कर्म शरीर और मन से होगा उससे मनुष्य स्वार्थी और कामी बनता जाएगा। स्वार्थी और कामी मनुष्य के साथ कभी दैवी संपत् संगृहीत नहीं हो सकती। इस कारण आत्मा कभी मोक्ष की ओर प्रगति कभी नहीं करेगा।

शास्त्र में कहा गया है कि धर्मो रक्षति रक्षितः अर्थात् मनुष्य धर्म को त्याग देता है तो धर्म उसे नष्ट कर देता है और धर्म की रक्षा करता है तो धर्म उसकी रक्षा करता है। ठीक जिस प्रकार मनुष्य वस्त्रों को मैला कर लेगा तो वस्त्र उसे मैला गन्दा बना देता है और जो वस्त्रों को साफ करके पहनता है वस्त्र उसे साफ बना देते हैं। आज प्रायः देखा जाता है कि निर्धन, पददलित, अधिकारवंचित, श्रमजीवी आदि छोटी और मध्यमश्रेणी के लोग ही दुखी नहीं हैं किन्तु धनी, पदाधिकृत, शासक आदि उच्च से उच्च व्यक्ति भी शान्ति की अनुभूति नहीं कर रहा है। अधिकार, धन,शासन आदि के गौरव को प्राप्त करके भी अशान्त और दुखी है। इसका एकमात्र कारण यह है कि चारों ओर से लूट खसूट, रिश्वत, चोरबाजारी और विश्वासघात है, छल-प्रपञ्च है, धनी दूसरों का शोषण कर रहा है। जिसके हाथ में अधिकार है वह दूसरों को अन्याय से पीड़ित कर रहा है। परस्पर में विश्वास नहीं, थोड़े से मतभेद के कारण मानवता को छोडकर नृशंस हत्या करने को उद्यत हो जाता है। जब दूसरी ओर से उसके साथ यही व्यवहार होता है तो वह अधर्म अत्याचार कहकर शोर मचाता है और धर्म की दुहाई देता है। किन्तु दूसरे के साथ अनुचित व्यवहार करने वाले व्यक्ति ने कभी सोचा भी नहीं कि इसे भी इतना ही कष्ट पहुँच रहा होगा, जितना किसी अन्य व्यक्ति के बुरे व्यवहार ने मुझे पहुँचाया है।

जब धर्म की भावना दूर हो जाती है तो स्वार्थी और कामी बनकर मनुष्य जो कुछ भी करता है उसमें किसी का भला बुरा नहीं देखता। स्वार्थी दोषं न पश्यति के अनुसार वह धर्माधर्म के विवेचन से दूर होकर बुराईयों से बच ही नहीं सकता। ऐसा मनुष्य देखने में तो मानव प्रतीत होता है किन्तु उसका संचालन जिस आत्मा के द्वारा हो रहा है, वह दानवीय भावनाओं से भरा हुआ है। ऐसे लोगों की वृद्धि ने ही संसार से शान्ति को मिटाकर सर्वत्र अशान्त वातावरण उत्पन्न कर दिया है। आसुरी भावनाओं से भरा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं कर सकता। आज से पाँच सहस्र वर्ष पूर्व महर्षि व्यास ने चिल्ला कर कहा-

ऊर्ध्वबाहु विरौम्येष न हि कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते।।

अर्थात् मैं भुजा उठाकर चिल्ला रहा हूँ परन्तु कोई नहीं सुनता और जिस धर्म के द्वारा अर्थ काम की भली प्रकार से प्राप्ति होती है उस धर्म का पालन कोई नहीं करता। इसी कारण से मनुष्य के चरित्र के स्तर में धर्म का सर्वथा अभाव हो गया है, केवल अर्थ और काम रह गये जो अनेक अनर्थों की सृष्टि कर रहे हैं। दर्शनकार ने ठीक कहा है-उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत् सिद्धिरितरथाऽन्ध परम्परा, अर्थात् जहाँ धर्मोपदेशक ठीक होते हैं और सुनने वाले भी ठीक होते हैं वहीं धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि होती है। जहां सुनने सुनाने और आचरण का अभाव होता है वहाँ अन्ध परम्परा चल पड़ती है, पापाचार फैल जाते हैं। पापान्धकार में लोगों को सन्मार्ग दिखाई नहीं देता है। बस मनुष्य में नैतिकता का संचार करना ही धर्म का वास्तविक उद्देश्य है, किन्तु भोगवाद और प्रकृतिवाद ने मनुष्य को इतना अन्धा बना दिया है कि वह धर्म और ईश्वर नाम की किसी वस्तु को देखना नहीं चाहता। हमारे विचार में इस्लाम, ईसाइयत एवं हिन्दुओं में प्रचलित रूढ़िवादियों को ही लोग धर्म समझते हैं और उन रूढ़िवादों का नियामक और संचालक ईश्वर को मानते हैं। इस प्रकार धर्म और ईश्वर संसार में अज्ञानी लोगों के लिए झगड़े के मूल कारण हैं। इसी तरह धर्म और ईश्वर को सब जगह से निकाला जा रहा है। किन्तु धर्म वह वस्तु है जो संसार को शांति देता है और लोगों को ऊँचा उठाता है। आचारप्रभवो धर्मः धर्मस्य प्रभुरच्युतः अर्थात् ऊँचे आचार का नाम धर्म है और उस धर्म के स्वामी का नाम ईश्वर है। धर्म और ईश्वर के इस व्यापक लक्षण को समझे बिना लोग इसका विरोध करते हैं। यह विरोध संसार में अनाचार और अशान्ति का हेतु है। क्योंकि सच्चे धर्म की शिक्षा के अभाव में विज्ञान की उच्च पढ़ाई, साहित्य और इतिहास की बहुत सी परीक्षाएं भी मनुष्य को चरित्रवान नहीं बना सकती। जीवन के सभी क्षेत्रों में नैतिकता आवश्यक है जो मानवता उत्पन्न कर सके। इसका एकमात्र साधन धर्म है जिससे देश के चरित्र का स्तर ऊँचा हो सकता है। ऐसे व्यापक और सार्वभौम धर्म का सन्देश सुनाने के लिए वेद का मार्ग ही सफल मार्ग हो सकता है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

''महर्षि देव दयानन्द के जीवन की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाएँ''

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड़ सन्ज़ १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दो तल्ला) कोलकत्ता-700007

(गतांक से आगे)

५. सन १८४६ ई. के आस-पास-गुरू दीक्षा लेने के बाद स्वामी जी चाणोद से हरिद्वार में कुम्भ के मेले में शामिल होने के लिए आ गये। यहाँ अनेकानेक साधु-सन्तों से मिलकर उनसे योग तथा अन्य शास्त्रों के सम्बन्ध में काफी चर्चा की और वहाँ पर ''पाखण्ड-खण्डनी'' पताका लहरा कर सबको अचम्भित कर दिया। इसी समय सन् १८५७ ई. के स्वतन्त्रता आन्दोलन की तैयारी चल रही थी। इसके लिए प्रथम प्रमुख सभा सन् १८४४ ई. में हरिद्वार में हुई जिसमें भारत के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह जफ़र के पुत्र फिरोजशाह अजीमुल्ला खाँ, रंगू बापू आदि विशिष्ठ जन सम्मिलित हुए। इसमें डेढ़ हजार के लगभग लोगों ने भाग लिया। दूसरी सभा गढ़गंगा के मेले के अवसर पर गढ़गंगा के किनारे सम्पन्न हुई। इसमें लगभग अढ़ाई हजार की उपस्थिति थी। तीसरी महत्वपूर्ण सभा अक्तूबर के अन्त में सन् १८५५ ई. में फिर हरिद्वार में हुई। इस सभा में ५६५ साधुओं व १८५ मुसलमान सूफी सन्तों ने भाग लिया। इस सभा की योजना स्वामी ओमानन्द जो स्वामी पूर्णानन्द के गुरू थे उन्होंने मिलकर तैयार की थी। इसमें स्वतन्त्रता संग्राम किस प्रकार किया जावे उस सम्बन्धी चर्चा की थी। जो बाद में सन् १८५७ ई. स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस योजना की पूरी व्यवस्था स्वामी विरजानन्द ने की थी। स्वामी दयानन्द इस योजना में गुप्त रूप से कार्य कर रहे थे। इसी समय स्वामी पूर्णानन्द ने स्वामी दयानन्द को गुरू विरजानन्द के पास जाने की प्रेरणा दी थी कारण स्वामी पूर्णानन्द स्वामी विरजानन्द का भी गुरू था और उसकी विद्वता के बारे में सब जानते थे। मुझे यहाँ यह बतलाना भी जरूरी है कि जब भी देश की स्थिति बिगड़ी है, तब-तब साधु-सन्तों ने ही देश की स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया है। राम के समय जब राक्षसों का प्रभाव बढ़ गया था। तब स्वामी विश्वामित्र तथा वशिष्ठ आदि ने मिलकर राक्षसों के राजा रावण को मार कर राक्षसों के प्रभाव को समाप्त करने की योजना बनाई थी। इस योजना के अधीन राम को इस कार्य के लिए योग्य समझ कर कैकेयी व दासी मन्थरा को तैयार किया गया था। जिससे राजा-दशरथ अपने प्रिय पुत्र राम को स्वामी विश्वामित्र के साथ वन में भेजने के लिए तैयार हो जावे उसी प्रकार अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए स्वामी ओमानन्द, स्वामी पूर्णानन्द व स्वामी विरजानन्द ने सन् १८५७ ई के स्वतन्त्रता संग्राम वाली योजना बनाई थी। सन् १८५७ ई. के समय स्वामी ओमानन्द जो स्वामी पूर्णानन्द का गुरू था, उसकी आयु १६० वर्ष की थी। स्वामी पूर्णानन्द की आयु 110 वर्ष की थी जो स्वामी विरजानन्द का गुरू था और स्वामी जी को भी सन्यास की दीक्षा दी और स्वामी विरजानन्द की आयु 79 वर्ष की थी जो बाद में स्वामी दयानन्द का गुरू बना। स्वामी दयानन्द की आयु 33 वर्ष की थी। इस प्रकार इन सब साधु-सन्तों की सन् १८५७ ई. के स्वतन्त्रता संग्राम की योजना की थी। यहां यह बात बतलानी भी बहुत जरूरी है कि १८५७ के स्वतन्त्रता आन्दोलन को अंग्रेजों ने ''सैनिक विद्रोह'' का नाम दिया था। परन्तु बाद में वीर सावरकर ने इसे स्वतन्त्रता संग्राम घोषित किया और इसी नाम से एक पुस्तक भी लिखी इसलिए यह कार्य वीर सावरकर का बहुत ही सराहनीय कार्य था जिसके लिए लेखक वीर सावरकर की प्रशंसा करता है।

६. सदगुरू विरजानन्द की कुटिया पर सन् १८५७ ई. के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के बाद स्वामी जी सच्चे शिव को पाने के लिए अनेक स्थानों पर गये। जिनमें पर्वतों की ऊँची-ऊँची चोटियों पर गये। एक ऐसी बस्ती में गए जिसमें दुर्गा के भक्त रहते थे। उन्होंने स्वामी जी का हट्टा-कट्टा, लम्बा-तगड़ा आर्कषक शरीर देखकर स्वामी जी को दुर्गा जी की भेंट चढ़ाने के लिए उद्यत हो गये। परन्तु स्वामी जी उनकी चाल को समझ गये और उनकी तलवार को छीन कर तलवार को घुमाते हुऐ मन्दिर की दीवार फांद कर अन्धकार में विलीन हो गये। अपनी इस यात्रा में स्वामी जी ओखी मठ भी गये और वहाँ के महन्त से शास्त्र चर्चा भी हुई। मठ के महन्त स्वामी जी की विद्वता तथा आकर्षक व्यक्तित्व देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। और उसने स्वामी जी को अपना शिष्य बन जाने को कहा, और मठ की लाखों की सम्पत्ति का स्वामी बन जाने को कहा, परन्तु उस महान निर्लोभी स्वामी जी ने उस प्रलोभन को ठुकरा दिया और आगे बढ़ गये। स्वामी जी बद्रीनारायण होते हुए अलकनन्दा नदी के तट पर जा पहुँचे। नदी के उद्गम स्थान पर पहुँचने के लिए स्वामी जी नदी में प्रवेश कर गये।

मौसम इतना शीतल था कि नदी का पानी बहुत शीतल था जिससे पानी की ऊपर सतह जम गई थी। जिससे स्वामी जी को नदी पार करने में अति कष्ट ही नहीं हुआ बल्कि किसी प्रकार जान को बचाकर नदी को पार कर लिया। फिर वहां से वापिस बद्रीनारायण लौट आये। फिर यहाँ से काशी पुर, द्रोणसागर, मुरादाबाद होते हुऐ गढ़मुक्तेश्वर के रास्ते गंगा के घाट पर आकर विश्राम किया। इस बीच उन्हें जो ग्रन्थ मिले उनमें एक ग्रन्थ नाड़ी चक्र के सम्बन्ध में था। उसका अध्ययन करते हुए उसके सत्य में उन्हें संशय हो गया। उसी समय गंगा में बहे चले जा रहे एक शव पर स्वामी जी की दृष्टि पड़ी और वे गंगा में छलांग लगाकर शव को किनारे पर बाहर निकाल लिया और उसे तेजधार चाकू निकाल कर शव की चीर-फाड़ करनी आरम्भ की। प्रथम हृदय बाहर निकाला और उसकी लम्बाई-चौड़ाई को नापा फिर ग्रन्थ में वर्णित नाभिचक्र आदि का परीक्षण किया परन्तु ग्रन्थ में लिखे की पुष्टि नहीं हुई तो उस ग्रन्थ को फाड़ कर फैंक दिया। इस घटना से स्वामी जी की जिज्ञासा प्रवृत्ति यानि सच्चाई को जानने की प्रवृत्ति का आभास होता है।

स्वामी जी अपनी यात्रा पर फिर आगे निकल पड़े। वे गंगा के किनारे-किनारे चलते हुए फर्रूखाबाद, फिर कानपुर और प्रयाग व काशी होते हुए चाण्डालगढ़ पहुँच गये। वे रास्ते में योगाभ्यास करते रहे साथ ही विद्वान सन्यासियों की खोज भी करते रहे ताकि किसी विलक्षण सन्त के दर्शन हो सके जिससे धर्म चर्चा कर सके, परन्तु कोई ऐसे सन्त व सन्यासी के दर्शन नहीं हो सके। स्वामी जी आगे बढ़े तो नर्मदा नदी के तट पर जा पहुँचे। वहाँ चलते हुए उनको अचानक सामने एक विशालकाय काला रींछ दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया और वह कुछ दूरी पर ठहर कर पिछले पैर पर खड़ा हो गया और जोर से चिंघाड़ा। स्वामी जी ने फूर्ति में अपना डण्ड़ा जैसे ही रींछ की तरफ बढ़ाया, वह सामने ठहर न सका, परन्तु रींछ जाते समय इतने जोर से चीखा कि उसकी आवाज़ सुनकर पहाड़ी लोग अपने कुत्तों सहित वहाँ उपस्थित हो गये। और उन्होंने स्वामी जी से बस्ती में ठहरने की प्रार्थना की। परन्तु स्वामी जी ने उनको विनम्रता पूर्वक लौटा दिया। और अपनी राह पर बढ़ चले। आगे का मार्ग कांटों भरा जंगल था जिसको पार कर दिया और फिर तीन वर्षों तक उस नर्मदा नदी के किनारे ही घूमते रहे। फिर वे घूमते-घूमते मथुरा में जा पहुँचे और वहाँ स्वामी जी ने गुरू विरजानन्द के दर्शन किये जिनसे मिलने के लिए उनकी आखिरी इच्छा थी जिसके पास जाने के लिए स्वामी पूर्णानन्द ने स्वामी दयानन्द को कही थी।

६. गुरू विरजानन्द के चरणों में-स्वामी जी ने अपने गुरू के चरणों में बैठकर लगभग तीन वर्षों

(शेष पृष्ठ 6 पर)

प्रभु भक्ति का वैदिक स्वरूप

ले.-डॉ. सत्यदेव सिंह 507 गोदावरी ब्लाक, कृष्ण नगर मथुरा

आत्मिक शान्ति और पूर्णानन्द को प्राप्त करने के लिये यह जीव मानव देह के रूप में धरती पर उत्पन्न हुआ है। यही इसके जीवन का चरम लक्ष्य है। इसीलिए यह जीव सुख और शान्ति की खोज में इधर-उधर चक्कर लगाता है, दर-ब-दर भटकता है और ठोकरें खाता फिरता है। इसके जीवन के सारे क्रिया कलाप व सारी उधेड़बुन केवल जीवन को शान्त और सुखमय बताने के लिये ही है, किन्तु इस जीवन संग्राम में इतनी खट-पट और उधेड़बुन करने पर भी जीव उस सच्चे सुख और शान्ति के स्थान पर अत्यन्त क्लेश, दु:ख व अशान्ति का ही अनुभव करता है। संसार के नाना-प्रकार के सुखप्रद विषयों और वैभवों का भोग करता हुआ भी, वह उनमें उस शान्ति व आनन्द का अनुभव नहीं करता, जिसकी उसे चिर-अभिलाषा रही है। ऐसा क्यों? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि मनुष्य जिन भौतिक पदार्थों में परमानन्द और परमशान्ति का अभिलाषी बन भटक रहा है, वे पदार्थ स्वयं सुख और शान्ति से रहित हैं, कोसों दूर हैं। भला जिसके पास जो वस्तु है ही नहीं, वह दूसरे को क्या दे सकेगा? जो स्वयं भूख व प्यास से तड़प रहा है, वह हमें कैसे स्वादिष्ट भोजन तथा मधुर जल का पान करा सकता है और हमारी भूख व प्यास शान्त कर सकता है? इसीलिए आत्मा जब इन भौतिक पदार्थों में भटक कर निराश हो जाती है, उसे अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। इतना ही नहीं, प्रत्युत् वह संसार के विविध विषयभोग और आमोद-प्रमोद, सुख और शान्ति के स्थान पर विपरीतत: उसके दु:ख व अशान्ति का कारण बन जाते हैं, परिणामत: वह (जीवात्मा/मनुष्य) निराश हो जाता है, कुण्ठाग्रस्त हो जाता है, उसकी आत्मा संतप्त और व्याकुल हो उठती है, उसे चारों ओर विषय-वासनाओं की जलती हुई प्रचण्ड ज्वालायें व्याकुल और अत्यन्त अशान्त बना देती हैं। ऐसी विषम अवस्था में मनुष्य को अपनी लाज बचाने के लिये, सुखमय जीवन जीने के लिए व परमशान्ति पाने के लिये उसे परमात्मा, ईश्वर वा परमप्रभु की याद आती है, उत्कट-अभिलाषा रूपी अभीप्सा जागृत होती है और वह पश्चाताप करता हुआ, वेद के शब्दों में परम प्रभु को पुकार उठता है-

''सं मां तपन्त्यभित: सपत्नीरिव पर्शव:।।''

(ऋग्वेद: 1/105/8)

अर्थात् हे दीनबन्धु! हे अधमोद्धारक पतितपावन प्रभो! अब तो मुझे ये तृष्णायें, संसार की ये क्षणिक कामनायें और विषयों की ये विषभरी वासनायें सपत्नियों के समान संतृप्त और व्याकुल कर रहीं हैं। हे प्रभो! अब मैं (भक्त) सब ओर से निराश होकर तेरे द्वार पर खड़ा हूँ, तेरे पास आया हूँ। हे दीनबन्धों! क्या इस दीन-भक्त की पुकार न सुनोगे? क्या अपने इस भक्त को संसार की क्षणिक वासनाओं से और तृष्णाओं से हटाकर अपनी प्रेममयी पावन गोद में नहीं लोगे? ऋषि दयानन्द के शब्दों में, उस समय परम प्रभु अपने भक्त या साधक की करुण पुकार को सुनते हैं, हाँ जरूर सुनते हैं और उसे अपनी सर्व-शक्तिमयी गोद में ले लेते हैं। वे परम प्रभु अपने शरणागत उपासक (भक्ति) को निज शरण में ले लेते हैं।

वास्तव में योगीजनों के शब्दों में इस संसार में 'अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश' नामक पंचक्लेशों से सन्तप्त और परिणाम-ताप-संस्कार-गुणवृत्ति विरोध नामक दु:खों से दु:खी जीव के लिए एकमात्र वह, सच्चिदानन्द प्रभु ही सच्ची शान्ति और नित्य सुख का सहारा हैं। इसीलिए वेद कहता है-

''न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।'' (ऋ. 7/11/1)

अर्थात्-''हे आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभो! तेरी शरणागति के बिना तेरा यह अमृतपुत्र रूपी भक्त (साधक) पूर्णानन्द को प्राप्त नहीं कर सकता।''

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय अगले मन्त्र में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

''त्वामींडते अजिरं दूत्याय हविष्मन्त: सदमिन्मानुषास:।

यस्य देवैरासदो बर्हिरग्ने-ऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति।।''

(ऋ. 7/11/2)

पदार्थ-1. हे अग्नि = अग्रणी प्रभो!, हविष्मन्त: हविवासे = त्यागपूर्वक अदन वाले, मानुषास: = विचारशील लोग, सदम्+इत् = सदा ही, दूत्याय = दूतकर्म के लिये, ज्ञान का सन्देश प्राप्त करने के लिये, अजिरम् = गति के द्वारा सब बुराइयों को परे हटाने वाले, त्वां ईडतं = आपको उपासते हैं। हम ज्ञान का सन्देश प्राप्त करने के लिए उस अजिर अग्नि की उपासना करें, उससे ज्ञान-सन्देश प्राप्त करें। सदा विचारशील बनकर हविवाले हों (मस्तिष्क के लिये ज्ञान और हाथों से यज्ञ)

2. हे प्रभो! जिस भी उपासक के, बर्हि: = वासनाशून्य हृदय में श्राप, देवै: = देवों के साथ, आसद: = आसीन होते हैं, अस्मै = इसके लिये, अहानि = सब दिन, सुदिना = शुभदिन, भवन्ति = हो जाते हैं।

मन्त्रसार:-हम त्यागपूर्वक अदन वाले विचारशील उपासक बनें हमारे हृदयों में देवों के साथ प्रभू का वास हो। इस प्रकार हमारे सब दिन, शुभदिन हों।

वस्तुत: जो मनुष्य (जीवात्मा) अपने जीवन को कदाचारों व कुत्सित संस्कारों से हटाकर, जब परम प्रभु परमात्मा की शरण में आ जाता है, या यों कहें कि जब भक्त, साधक या शरणागत मनुष्य अपनी अधमावस्था पर पश्चाताप करता हुआ, उस अधम-अवस्था का परित्याग करता हुआ सत्पुरुषों की संगति में आ जाता है और सन्मार्गगामी बन जाता है, तब परमपिता परमात्मा अवश्य ही कृपा करके अपने भक्त/साधक के ऊपर सब प्रकार के सुखों की वर्षा करते हैं। इस सन्दर्भ में वेद की निम्नांकित ऋचा (मन्त्र) स्पष्टत: कहती हैं:-

''त्वमग्ने इन्द्रो वृषभ: सतामसि। त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्य:।

त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते। त्वं विधर्त: सचसे पुरन्ध्या:।।

(ऋग्वेद मं.-2, सू. मं.-3)

अर्थात्

''हे परम ज्योतिर्मय प्रभो! तू ही तो सत्पुरुषों के लिए, अपने अनन्य भक्तों। साधकों के लिए इन्द्र और वृषभ बन कर, उसके समग्र ऐश्वर्यों और सकल सुखों की वर्षा करने वाले हों।''

अथर्ववेद के अन्तर्गत भी इस विषय में एक मन्त्र इस प्रकार कहता है:-

''मा ते भयं जरितारम्।'' (अथर्व. 1/186/4) अर्थात्

''तेरे भक्त/साधक को भय, चिन्ता या दु:ख कहाँ? वेद के इस वचन से सिद्ध होता है कि एक मात्र प्रभु भक्ति, प्रभु शरणागति ही, यहाँ भव-बन्धन में पड़े हुये जीव (मनुष्य) को, सुख-शान्ति और परमानन्द प्रदान करने वाली है।''

बिना ईश्वर की आराधना के, उपासना के जीवात्मा को परमशान्ति और परमानन्द की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, अपितु नितान्त असम्भव है। वेद वाणी भी यही निर्देश दे रही है :-

''तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय।।'' (यजु. 31/19) अर्थात्

तमेव = उसको (परमात्मा को) ही, विदित्वा = जानकर मनुष्य, मृत्युं = मृत्यु को, अति+एति = अतिक्रमण करता है, अयनाय = अभीष्ट स्थान तक पहुँचने के लिए अथवा परमानन्द को पाने के लिए, अन्य: = और कोई, पन्था: = मार्ग, न = नहीं, विद्यते = है। इस मन्त्रांश का सार है कि भव-सागर से पार जाने के लिए उस परम प्रभु को जानने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है।

अब उस प्रभु का क्या स्वरूप है, थोड़ा इस पर विचार करना आवश्यक है। भक्ति में तीन बातों को जान लेना परमावश्यक है हम किस की भक्ति करें, कैसे बनकर करें, और क्यों करें? इन तीनों बातों के जाने बिना जो जन भक्तिमार्ग पर चलने लगते हैं, वे सदा अपने चरम लक्ष्य से वंचित ही रहते हैं, उन्हें निज-अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। अत: भक्ति मार्ग के पथिक को उपर्युक्त तीनों बातों का जान लेना परमावश्यक हैं। वे तीन बातें या करणीय कर्त्तव्य इस प्रकार हैं।

(क्रमश:)

पृष्ठ 4 का शेष-''महर्षि देव दयानन्द के जीवन की...

तक आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया और दयानन्द सन् १८६० ई. में व्याकरण के सूर्य दण्ड़ी स्वामी विरजानन्द की कुटिया का द्वार खटखटाया। अन्दर से आवाज आई कौन? दयानन्द बोले ''मैं यही जानने के लिए ही आया हूँ कि ''मैं कौन हूँ?'' यह सुनकर विरजानन्द जी बड़े प्रसन्न हुए और यह समझ लिया कि आज वही शिष्य आया है जिसके मैं इन्तजार में था। विरजानन्द ने दरवाजा खोला और एक विशालकाय को देखकर बड़े अचम्भित हुए। दयानन्द ने गुरू जी के पैर छूकर प्रणाम किया और फिर पढ़ाने के लिए निवेदन किया। गुरू जी ने कहा तुमने अभी तक क्या पढ़ा है? दयानन्द ने सब पुस्तकों के नाम बता दिये। तब गुरूजी बोले ये सब अनार्ष ग्रन्थ है, मैं तुमको आर्षग्रन्थ पढ़ाऊँगा। पहले तुम उनको यमुना नदी में बहाकर आओं। दयानन्द ने यही काम किया और स्वामी विरजानन्द से पढ़ना आरम्भ कर दिया। स्वामी विरजानन्द ने दयानन्द को एक बात और कही थी कि पढ़ा तो मैं तुमको दूँगा लेकिन रहने की और खाने की व्यवस्था तुमको स्वयं को करनी होगी। सो रहने के लिए स्वामी जी ने मथुरा में विश्रामघाट के लक्ष्मीनारायण मन्दिर के नीचे प्रवेश द्वार के साथ एक छोटी सी कोठरी उन्हें मिल गई। यद्यपि वे उसमें पैर पसार कर भी नहीं बैठ सकते थे फिर भी वे संन्तुष्ट थे। भोजन के लिए कुछ समय के लिए दुर्गा प्रसाद क्षत्रिय, सदैव के लिए अमर लाल ज्योतिषी और पढ़ने के समय दीये में तेल के लिए लाला गोवर्धन सर्राफ द्वारा व्यवस्था हो गई। इन तीनों के प्रति हर आर्य समाजी हमेशा के लिए ऋणी बना रहेगा।

स्वामी दयानन्द गुरू विरजानन्द की बड़ी सेवा करता था (पढ़ते समय) नित्य यमुना नदी में उतर कर उसकी पवित्र गहरी धाराओं से आठ-दस घड़े पानी लाकर नहलाता तथा कुटिया में झाड़ू लगाकर कुटिया को साफ रखता था। कभी किसी काम में भूल हो जाती तो गुरू जी की पिटाई भी सहन करता था।

गुरू दक्षिणा:-स्वामी जी अन्दाज तीन साल सद्गुरू विरजानन्द से शिक्षा लेने के बाद शिक्षा पूरी होने पर गुरू दक्षिणा के रूप में स्वामी जी कुछ लौंग जो गुरू जी को अति प्यारी थी, लेकर उनके पास पहुँचे, तब दण्ड़ी स्वामी विरजानन्द ने कहा ''दयानन्द''! मुझे दक्षिणा में लौंग नहीं चाहिए, तब स्वामी जी ने कहा कहो गुरूवर! आपके शिष्य का तन, मन गुरू चरणों में समर्पित है तब गुरू जी ने कहा दयानन्द! देश में अज्ञान का अन्धकार छाया हुआ है, कुरीतियों में फँसे लोग निष्क्रिय जीवन जी रहे है। अन्धकार की जड़े गहरी हो गई है। वैदिक ग्रन्थों का पठन-पाठन, चिन्तन मनन विलुप्त सा हो गया है। विभिन्न मत-मतान्तरों ने अपने पैर फैला लिए है। दीन-हीन समाज दुर्गति की ओर अग्रसर है। समाज को इस अधोगति से बचाओ, लोक कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित करों। सोते देश को जागृत करो। इसके अतिरिक्त गुरू दक्षिणा में मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने अपना सिर गुरू चरणों में रख दिया और बोले। आपकी आज्ञा शिरोधार्य गुरूवर! और दयानन्द जीवन भर समाज सेवा के लिए कार्य क्षेत्र में उतर पड़े।

स्वामी जी ने सन् १८६३ ई. में गुरू विरजानन्द से विदाई ली और सन् १८८३ ई. में स्वर्गवासी हो गये इन बीच के 20 वर्षों में स्वामी जी ने जितना काम किया उतना काम हर व्यक्ति नहीं कर सकता। इन बीस वर्षों में स्वामी जी ने सैकड़ों शास्त्रार्थ हजारों मुल्लाओं, पादरियों व पौराणिक पण्डितों से किये, जिसमें काशी का शास्त्रार्थ उनका सबसे अधिक प्रसिद्ध है। पूरे भारत में घूम-घूम कर वेद प्रचार, कुरीतियों-कुप्रथाओं के विरूद्ध हजारों वक्तव्य दिये और भी अनेकों कार्य किये जिनमें अजमेर में सन् १८६६ ई. में कर्नल ब्रुक्स से गोरक्षा की पैरवी करने को कहा। सन् १८६८ ई. में हरिद्वार के कुम्भ मेले पर 'पाखण्ड-खण्डनी'' पताका लहराई, सन् १८६८ ई. में किसी धर्मान्ध ब्राह्मण ने स्वामी जी को पान में विष दे दिया। उसको कारावास न करवा कर छुड़वा दिया। सन् १८६८ ई. में ही राव कर्ण सिंह ने स्वामी जी के ऊपर तलवार से वार किया तब कर्णसिंह से तलवार छीन कर उसके दो टुकड़े कर दिये। सन् १८६८ ई. में काशी के पौराणिक विद्वानों से वेदों में मूर्ति पूजा नहीं विषय पर शास्त्रार्थ किया और विजय प्राप्त की, सन् १८७५ ई. में गिरगाँव मोहल्ले में डॉ. माणिक चन्द की वाटिका में १० अप्रैल १८७५ ई. में मुम्बई में ''आर्य समाज'' की स्थापना की ताकि मेरे जाने के बाद भी वेद-प्रचार व देश सुधारक काम चलता रहे। वहाँ आर्य समाज के २८ नियम बनाए गये। सन् १८७५ ई. में ही स्वामी जी ने न्यायाधीश श्री महादेव गोविन्द रानाडे के विशेष अनुरोध पर पूना में पन्द्रह प्रवचन सभी विषयों पर किये जो काफी प्रसिद्ध है। सन् १८७६ ई. में स्वामी जी ने दिल्ली में सभी समाज सुधारकों की बैठक बुलाई। जिसमें श्री केशव चन्द्र सेन, सर सैयद अहमद खाँ, श्री हरिशचन्द चिन्तामणि, श्री नवीन चन्द्र राय, श्री कन्हैया लाल जी अलखधारी और श्री इन्द्रमणि जैसे समाज सुधारक उपस्थित हुए। स्वामी जी की इच्छा थी कि देश जो अधोगति को जा रहा है। उसकी उन्नति के लिए हम सब मिलकर रास्ता निकाले किन्तु वैचारिक सामञ्जस्य के अभाव में महर्षि जी की यह योजना सफल नहीं हो सकी। सन् १८७६ ई. में स्वामी जी लाहौर पधारे। यहाँ स्वामी जी मुम्बई में बनाये गये २८ नियमों को छोटा रूप देकर दस नियम बनाये जो अभी तक चलते आ रहे है। लाहौर से स्वामी जालन्धर पहुँचे, वहाँ सरदार विक्रम सिंह जी के कहने से दो घोड़ों की बग्गी को रोककर अपने ब्रह्मचर्य का प्रदर्शन किया। इसके बाद २५ दिसम्बर १८७८ ई. को रिवाड़ी पहुँचे और वहाँ आर्य समाज की स्थापना की और राव युधिष्ठर के हाथों एक गऊशाला की स्थापना भी करवाई जिसको भारत की सर्वप्रथम गऊशाला का गौरव प्राप्त है। सन् १८७८ ई. में स्वामी जी बरेली पहुँचे, वहाँ नानक कोतवाल से पुत्र मुन्शीराम से जो ईश्वर को नहीं मानते थे और नास्तिक थे। जब पिता जी के कहने से मुन्शीराम ने स्वामी जी के प्रवचन सुने जो ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में थे तो मुन्शीराम बहुत अधिक प्रभावित हुए और स्वामी जी की दिनचर्या और प्रवचनों से मुन्शीराम पक्का आस्तिक और ईश्वर भक्त हो गया। यही मुन्शीराम आगे चलकर स्वामी श्रद्धानन्द बने और आर्य समाज के विख्यात विद्वान व सन्यासी बने। १६ मई सन् १८८१ ई. में पं. लेखराम ने पेशावर से चलकर अजमेर में स्वामी जी के दर्शन किये और कुछ प्रश्नों के सही उत्तर पाकर पक्के आर्य समाजी बन गये। आगे चलकर २६ फरवरी १८८३ ई. को उदयपुर में परोपकारिणी सभा स्थापित की जो आज भी सुचारू रूप से चल रही है। अजमेर से स्वामी जी जोधपुर के महाराजा सज्जन सिंह के निमन्त्रण पर जोधपुर चले गये। वहाँ महाराजा के एक वेश्या नन्ही जान से गलत सम्बन्ध देखकर स्वामी जी ने महाराज को फटकार लगाई जिससे नन्हीजान क्रोधित होकर स्वामी जी के रसोईया जगन्नाथ मिश्रा को कुछ प्रलोभन देकर उससे स्वामी जी के दूध में कालकूट विष डालकर पिला दिया जिससे स्वामी जी 30 अक्तूबर १८८३ ई. को दीपावली के दिन सायं ६ बजे स्वर्गवासी हो गये और वह सबका कल्याण चाहने वाला महामानव सदा-सदा के लिए इस संसार को छोड़कर चले गये।

इस लेख में मैंने महर्षि देव दयानन्द की पूरी जीवनी, बड़े छोटे रूप में प्रस्तुत की है। इसलिए इस लेख को पढ़ने के बाद, उसे महर्षि के पूरे जीवन की जानकारी हो जायेगी। ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। सभी सुधि पाठक गण मेरे इस सद्प्रयास का लाभ उठावें। इसी में मेरी प्रसन्नता निहित हैं।

पृष्ठ 2 का शेष-वेदों का राजनैतिक चिन्तन

ऐसे शासक के विषय में यजुर्वेद 23.19. कहता है, **'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।'** जनमत के बल पर ही अकेले निहत्थे नेपोलियन ने सेन्टहेलना की जेल से भाग कर फ्रांस को जीत लिया था और विशाल सेना के होते हुए भी लुई 16वें को फ्रांस से भाग कर इंग्लैण्ड में शरण लेनी पड़ी थी।

प्रजातंत्र, तानाशाही, कुलीन तंत्र, सैनिक शासन में प्रजातंत्र को ही सर्वश्रेष्ठ शासन माना जाता है। अब्राहम लिंकन के शब्दों में, प्रजातंत्र जनता का शासन, जनता द्वारा शासन और जनता के लिए शासन होता है। वेदों में इसी प्रकार के शासन का वर्णन है। ऋ. 1.80. में 16 ऋचाएं हैं जिनमें प्रत्येक के अन्त में स्वराज्यम् अनु अर्चन' शब्द आया हुआ है! इन ऋचाओं में एक लोक कल्याणकारी राज्य के विषय में विस्तृत वर्णन है। राजा का चुनाव प्रजा द्वारा अपने में से योग्यतम व्यक्ति को चुन कर किया जाता है, राजा के चुनाव में जाति अथवा क्षेत्र विशेष का कोई महत्व नहीं है! अथर्ववेद 2.6.3. में कहा गया है-

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवानः।

हे राजन्। ये वेदवेत्ता विद्वान् लोग तुझको चुनते हैं।

हे तेजस्वी राजन् हमारे चुनाव में मंगलकारी हो।

इसी प्रकार अथर्ववेद 3.4.7 में कहा गया है-

पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वा संगत्य वरायस्ते अक्रन्।

मार्ग पर पैदल चलने वाली, धनवान विविध आकार एवं स्वभाव वाली सब प्रजाओं ने एक मत होकर तेरे लिए यह श्रेष्ठ पद प्रदान किया है।

अथर्ववेद 3.4.5 में कहा गया है, अत्यन्त दूर देश से आकर पधार। तेरे लिए सूर्य और पृथ्वी मंगलकारी होवें।

अधिक बड़े राष्ट्र को गण, मण्डल, विश तथा ग्रामों में विभाजित कर दिया जाता है! वेदों में वंश परम्परागत राज्यों व शासकों का उल्लेख नहीं हुआ है। वेदों में कहीं नहीं लिखा है कि कोई व्यक्ति यह कहे कि मैं राजा हूँ, मेरे पिता भी राजा थे और मेरे पश्चात् मेरा पुत्र भी राजा बनेगा। यजुर्वेद में भी बालिग मताधिकार से राजा के चुने जाने का वर्णन है। यजुर्वेद अध्याय 10 के मंत्र संख्या 2.3 व 4 में इसका उल्लेख है। इन मंत्र में राजा पद का उम्मीदवार अपने लिए मत दिए जाने की याचना कर रहा है। वह बार-बार कहता है : राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे देहि स्वाहा। आप अपने राष्ट्राध्यक्ष का चुनाव कर रहे हैं तो इस पद के लिए आप मुझे चुने। इन मंत्रों में राष्ट्राध्यक्ष के लिए आवश्यक गुणों का वर्णन कर कहता है कि ये सब गुण मुझ में हैं इसलिए आप मेरा चयन करें। संसद-राजा अपने कार्य के प्रति राजार्य सभा, विद्या सभा और न्याय सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। ये तीनों सभाएं अपने कार्य में प्रभुत्व सम्पन्न होती है। इनका गठन श्रेष्ठतम नागरिकों द्वारा होता है। ऋ. 3.38.6 के अनुसार

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।

अर्थात् राजा और प्रजा मिल कर सुख प्राप्ति और विज्ञान वृद्धि कारक राजा-प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, राजार्य और धर्मार्य सभा (न्याय सभा) का गठन करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या स्वातन्त्र्य, धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करे।

अथर्ववेद में भी इनका उल्लेख हुआ है-, तं सभा च समितिश्च सेना च। अथर्व. 15.9.2

इसी प्रकार अथर्व. 19.55.6 में कहा गया है-

सभ्य सभा मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः।

यहां सभासदों से नियमों को पालन करने के लिए भी कहा गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती इसके भावार्थ में कहते है कि एक व्यक्ति को राज्य का स्वतंत्र अधिकार नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से राज्य नष्ट हो जाता है। स्वामी जी शतपथ 13.2.3 को उद्धृत कर कहते हैं, 'राष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद्राष्ट्री घातुकः।

विशमेव राष्ट्राया द्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुंमन्यत इति।

जो प्रजा से स्वतंत्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो (राष्ट्रमेव विश्वा हन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें। इसलिए अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होकर (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है, (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाये जाता है इसीलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन नहीं करना चाहिए। जैसे सिंह अथवा मांसाहारी पशु दूसरे पशुओं को मार कर खा लेते हैं वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतंत्र राजा प्रजा का नाश करता है।

सार्वभौम अधिकार-राष्ट्र में राजार्य सभा (वर्तमान में संसद) ही सर्वोपरि होती है। वही राष्ट्र के बजट को स्वीकार करती है। शासक उसके प्रति उत्तरदायी होता है! युद्ध और सन्धि की आज्ञा भी उसी को विश्वास में लेकर की जाती है। वह बहुमत से सर्वोच्च शासक को भी हटा देती है। धर्मार्य सभा का कार्य यह देखना है कि कार्य ढंग से चल रहा है अथवा नहीं। वह कानून की व्याख्या करती है और यदि कोई कानून संविधान की मूल आत्मा के विरूद्ध हो और प्रजा के लिए कष्टदायी हो तो वह उसे निरस्त भी कर देती है! व्यवस्था के विरूद्ध कार्य करने वालों को दण्डित करना उसका मुख्य कार्य है। विद्यार्य सभा राज्य में शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का उत्तरदायित्व संभालती है।

महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में बोधोत्सव का आयोजन

आर्यजनों को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि प्रतिवर्ष की भांति आगामी वर्ष में महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में शिवरात्रि के पावन पर्व पर भव्य ऋषि बोधोत्सव का आयोजन बुधवार, वीरवार, शुक्रवार 10,11,12 मार्च 2021 को किया जायेगा। आपसे निवेदन है कि आप यह तिथियाँ अभी से अंकित कर लेवें और इन तिथियों में अपनी आर्य समाज एवं अपनी संस्था का कोई कार्यक्रम न रखकर उक्त समारोह में अधिक से अधिक आर्यजनों के साथ टंकारा पधारने का कार्यक्रम बनायें। आपके आवास एवं भोजन की व्यवस्था टंकारा ट्रस्ट की ओर से होगी। अपने आने की पूर्व सूचना अवश्य भेजें। अथवा व्हाट्स-अप नं. 9560688950 सन्देश द्वारा सूचना भेजें।

आर्य समाज नवांकोट अमृतसर का वार्षिक चुनाव

आर्य समाज नवांकोट अमृतसर के सदस्यों की एक मीटिंग हरी ओम जी की अध्यक्षता में हुई। इस मीटिंग में सर्वसम्मति से पास किया गया कि प्रधान डॉ. प्रकाश चन्द्र जी को बनाया जाए व मन्त्री श्री बाल कृष्ण आर्य जी को बनाया गया व उपप्रधान विजय आनन्द जी को बनाया गया। निम्नलिखित टीम का चुनाव किया गया जो इस प्रकार है:-संरक्षक व वरिष्ठ उपप्रधान- पं. बनारसी दास आर्य, प्रधान- डॉ. प्रकाश चन्द्र, उपप्रधान- श्री विजय आनन्द, मन्त्री- एडवोकेट बाल कृष्ण आर्य, उपमन्त्री- डॉ. राजेश कुमार आर्य, मीडिया प्रभारी-श्री कीमती लाल आर्य, कोषाध्यक्ष-श्री लक्ष्मण कुमार आर्य, सहायक कोषाध्यक्ष व वेद प्रचार- श्री रमन कुमार, आर्य समाज भवन की देखरेख व अन्य सेवा- श्री हरविन्द्र कुमार, सेवादार- श्री हरजिन्द्र सिंह व धनी राम। अन्य अन्तरंग सदस्य-श्री राजकुमार योगाचार्य, श्री अशोक लाहौरिया, अंकित मदान, हरी ओ३म्, जुगल किशोर, आशु वर्मा, अशोक कुमार महाजन, राज कुमार, सौरभ आर्य तथा स्त्री आर्य समाज की सभी सदस्याएं।

-बाल कृष्ण मन्त्री आर्य समाज नवांकोट अमृतसर

आर्य कालेज महिला विभाग लुधियाना में विश्व शांति दिवस पर वेबिनार का आयोजन

आर्य कालेज महिला विभाग लुधियाना में विश्व शांति दिवस के अवसर पर एक वेबिनार का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आर्य कालेज लुधियाना की प्रबन्धकीय समिति की सचिव श्रीमती सतीशा शर्मा जी, आर्य कालेज महिला विभाग की इंचार्ज प्रो. सूक्ष्म आहलूवालिया, आर्य कालेज लुधियाना की प्रिंसीपल डा. सविता उप्पल, प्रो. ममता भोला, प्रो.अमनप्रीत, प्रो. शिवांगी गुप्ता ने भी सम्बोधित किया। इस अवसर पर छात्राओं ने विश्व शांति दिवस के उपलक्ष्य में कविता का गायन भी किया।

आर्य कालेज गर्ल्ज सैक्शन लुधियाना में विश्व शान्ति दिवस के उपलक्ष्य में एक वेबिनार का आयोजन किया गया। वेबिनार में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुये आर्य कालेज प्रबन्धकीय समिति की सचिव श्रीमती सतीशा शर्मा जी ने बताया कि प्रति वर्ष 21 सितम्बर को पूरे विश्व में शांति दिवस मनाया जाता है। सम्पूर्ण विश्व में शांति की स्थापना ही इस दिन को मनाने का लक्ष्य है। उन्होंने कहा कि विश्व शांति की वैदिक भावना को हमें जन-जन तक पहुंचाना होगा। उन्होंने कहा कि आज का मनुष्य संसारिक विषय वासनाओं के जाल में फंसकर अशान्त जीवन जी रहा है। अमेरिका जैसे अमीर देश में 40 प्रतिशत से अधिक लोग मानसिक रोगों से ग्रसित है। इसलिए विश्व शान्ति दिवस मनाते हुए हमें सबसे पहले अपने आपको शान्त बनाना है। यदि हमारे जीवन में शान्ति नहीं है तो विश्व में भी शान्ति की कल्पना करना असम्भव है। इस अवसर पर बोलते हुये आर्य कालेज की प्रिंसीपल डा. सविता उप्पल ने कहा कि आज के युग की प्रधान समस्या तनाव है। तनाव व्यक्ति के शरीर और मन में अनेक बीमारियों को जन्म देता है। मानव जितना अशान्त है, पशु पक्षियों में उसका शतांश देखने को नहीं मिलता। पशुओं में संवेग उपजते हैं, वे भी कभी-कभी थोड़े समय के लिए ,किन्तु मनुष्य वर्षों तक तनावग्रस्त जीवन को जीता नजर आता है। कई बार तो मानव तनाव से ग्रस्त होकर आत्महत्या जैसा जघन्य अपराध करने के लिए तैयार हो जाता है। मनुष्य को तनाव भी अनेक प्रकार के होते हैं। कहीं पर मनुष्य धन न होने के कारण तनावग्रस्त रहता है, कहीं पर काम से ग्रसित होकर तनाव में रहता है, कहीं क्रोध के कारण तो कहीं पर लालच के कारण तनावग्रस्त रहता है। आज इंसान दिन प्रतिदिन शान्ति से दूर होता जा रहा है इसलिये इस दिन को मनाने की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। वेबिनार की संयोजिका आर्य कालेज गर्ल्ज सैक्शन की इंचार्ज प्रो. सूक्ष्म आहलूवालिया ने अपने वक्तव्य में कहा कि इस कार्यक्रम का यही लक्ष्य है कि शांति का संदेश विश्व के कोने कोने में पहुंचाने में हम अपनी भूमिका निभाएं। हम अपने आसपास शान्ति का वातावरण बनाएं रखें, अपने विचारों में शान्ति लाएं। संस्कृत विभाग के डा. आशीष कुमार जी ने भी इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर छात्राओं ने विश्व शान्ति पर अपनी कविताएं भी प्रस्तुत कीं। वेबिनार के अंत में वेबिनार की संयोजिका प्रो. सूक्ष्म आहलूवालिया ने मुख्य वक्ता सचिव आर्य कालेज प्रबन्धकीय समिति श्रीमती सतीशा शर्मा, प्रिंसीपल आर्य कालेज डा. सविता उप्पल और सभी ऑन लाइन माध्यम से जुड़े हुये श्रोताओं का धन्यवाद किया।

वेदवाणी

मिलकर कर्त्तव्य पालन

सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते।।

-ऋ० ७?५२।२

ऋषिः-**अथर्वा।।** देवता-**सांमनस्यम्, अश्विनौ।।** छन्दः-**त्रिष्टुप्।।**

विनय-हमें अपना सब सामूहिक सोचना-समझना मिलकर ही करना चाहिए। हम एक होकर, एकमत से ही किसी कार्य को प्रारम्भ करें। हम जो बहुत बार एकमत नहीं हो पाते हैं उसका कारण यह होता है कि हम 'दैव्य मन' से सोचना छोड़कर आसुर मन से विचारने लगते हैं। आसुरीवृत्ति से, स्वार्थप्रेरित होकर, एक-दूसरे पर अविश्वास करते हुए, एक-दूसरे को तिरस्कृत करते हुए हम चलेंगे तो हम कभी भी एकमत नहीं हो सकेंगे, अतः हमें निःस्वार्थ प्रेम से युक्त दैव्य-मन को कभी नहीं त्यागना चाहिए और एकमत हो, एक निश्चय के साथ सर्वहितकारी बड़े-से-बड़े काम को उठा लेना चाहिए तथा उसे एकभाव से ही प्रेरित हो चलाते जाना चाहिए। फिर बड़ी-से-बड़ी भयङ्कर विपत्तियाँ आने पर भी विह्वल नहीं होना चाहिए। असफलताएँ और विघ्नों की रात्रियाँ तो प्रत्येक महान् कार्य में आया ही करती हैं। इन क्षुद्र असफलताओं पर हाहाकार मचाना तो क्या, यदि महादारुण प्रलय की रात्रि भी आ जाए और ये विशाल द्यौ और पृथिवी भी नष्ट होने लगे, तो भी हमें विचलित नहीं होना चाहिए अपितु अटल निष्ठा से अपनी साधना में लगे रहना चाहिए। फिर इस रात्रि के बाद दिन आ जाने पर भी, सब अनुकूल अवस्थाएँ हो जाने पर भी, हमें मौज लूटने में ग्रस्त नहीं हो जाना चाहिए। अपने अन्तिम लक्ष्य को भूल विषय-भोगों, विजयोत्सवों में नहीं पड़ जाना चाहिए, क्योंकि ऐसे ही समय में 'इन्द्र का इषु' गिरा करता है, वज्रपात हुआ करता है, ईश्वरीय मार पड़ा करती है। यह दैवी मार बहुत बुरी होती है। वे बड़े-बड़े साम्राज्य जोकि अपने बड़े दुर्दान्त शत्रुओं के घोर आक्रमणों को भी सह गये, पीछे से विषय-भोगों में ग्रस्त होकर स्वयमेव नष्ट हो गये, 'इन्द्र के इषु' से मारे गये, अतः आओ, अपने अन्धकार के समय में भी और प्रकाशकाल में भी, हम कभी दैव मन को न छोड़ते हुए सदा मिलकर, खूब सोच-समझकर, एकमत से अपने सर्वोदय के महान् कार्यों को चलाते जाएँ।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**